तत्त्वार्थ सूत्र का अब यह नौवाँ अध्याय प्रारम्भ होता है। पिछले अध्यायों में जीव-अजीव, आस्त्रव और बन्ध तत्त्व तक का वर्णन आपके लिए हो चुका था। आस्त्रव और बन्ध तत्त्वों को हेय भी माना जाता है और संवर और निर्जरा तत्त्वों को उपादेय कहा जाता है। इस नौवें अध्याय में उसी संवर और निर्जरा तत्त्व का वर्णन है, जो उपादेय रूप हैं। हेय रूप जो आस्त्रव और बन्ध हैं, वे पिछले अध्यायों में आपको बता चुके हैं। इस अध्याय में संवर और निर्जरा के लिए कारण, जो व्रत आदि हैं, उनका भी वर्णन इस अध्याय में मिलेगा। सबसे पहला सूत्र संवर पदार्थ को बताने के लिए, संवर की परिभाषा के रूप में कहा गया है।

CLASS-01

आस्त्रव निरोधः संवरः ॥9.01॥

अर्थात् आस्त्रव को रोकना ही संवर है। वह आस्त्रव दो प्रकार का होता है...भाव आस्त्रव और द्रव्य आस्त्रव। उन दोनों ही प्रकार के आस्त्रवों के रोकने पर संवर भी दो प्रकार का हो जाता है...भाव संवर और द्रव्य संवर। जो कर्म रुक जाते हैं, वह आगामी कर्मों के रोकने की प्रक्रिया होती है, वह संवर के रूप में होती है। जो कर्म पूर्व बद्ध होते हैं, उन कर्मों जो बाहर निकालने की जो प्रक्रिया होती है, वह निर्जरा के रूप में होती है। यह संवर और निर्जरा जब आत्मा में अच्छी तरह से घटित होने लगते हैं तभी यह मोक्ष की ओर, जीव के आगे बढ़ाने के लिए कारण बन जाते हैं। इसलिए संवर और निर्जरा तत्त्व को उपादेय कहा क्योंकि संवर और निर्जरा होने पर ही धीरे-धीरे इस जीव को मोक्ष तत्त्व की उपलब्धि होगी। यही इस सूत्र का मुख्य अभिप्राय है। इसलिए यहाँ पर जो सूत्र लिखा है उसमें सभी अर्थ गर्भित हैं।

- **सूत्र में सारा अर्थ गर्भित होता है**

सूत्र इसलिए कहे जाते हैं क्योंकि इनमें बहुत सारा अर्थ भरा हुआ रहता है। अगर उस अर्थ की भूमिका को हम नहीं समझेंगे तो जितना किताब में लिखा हुआ है, उतना ही समझ में हमें आ पाएगा और आ भी पाएगा तो सिर्फ हम उसको रट पाएँगे, समझ नहीं पाएँगे। अन्यथा सूत्र की तो केवल व्याख्या इतनी ही है...आस्रव के रुक जाने का नाम संवर है। वह तो आप बाल-बोध से पढ़ते आ रहे हैं। संवर किसे कहते हैं? जो आस्रव हो रहा था, उसको रोकना उसका नाम संवर है और वह आप जानते ही हैं...**'ज्यों मोरी में डाँट लगावे त्यों जल रुक जाता त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहीं मन लाता'** वह जो डाँट लगाना है, वह आस्रव को रोकना है। वह कौन रोके? किससे रोके? कौन सी चीजों का पहले रोकना हो? यह सब ज्ञान तो हमें सूत्र का व्याख्यान करने पर ही आएगा। वह व्याख्यान जब होगा तो उसमें जो भी आपके सामने आस्रव के कारण थे, उन आस्रव के कारणों से ही जो बन्ध हो रहा था और उन बन्धों के जो कारण हैं, उन कारणों को आपको पहले रोकना पड़ेगा। एक तो आपने आस्रव के बारे में समझ लिया कि आस्रव के निरोध मतलब रोकने का नाम संवर है। अब आस्रव का मतलब क्या समझ में आया?

मोह का संवर पहले करें

मन - वचन - काय के योगों को रोकने का नाम संवर है और ऐसा संवर अगर हम करने बैठ गए तो हमें बिना कुछ मोह का संवर किए हुए, कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। मन-वचन-काय की क्रिया रोकने के लिए चेष्टा तो कोई भी कर सकता है। अतः हम भी बैठ गए...मन-वचन-काय की क्रियाओं को रोक लेंगे, संवर हो जाएगा, निर्जरा हो जाएगी, मोक्ष हो जाएगा। इस सूत्र से तो ऐसे नहीं होने वाला। इसको इसलिए समझाना पड़ रहा है कि हम समझें कि जब यह संवर योगों का होगा तो

उससे पहले हमें मोह का संवर कर लेना पड़ेगा। इसलिए जितना भी गुणस्थान पहले से लेकर के 14वें तक का जो खेल है, वह सब मोह और योग पर depend करता है। आस्रव के अब कारणों की ओर चले। अभी तो हमने क्या सीखा था? केवल आस्रव को ध्यान में रखा कि आस्रव के रुकने का नाम संवर है। क्योंकि हम यह भी जान चुके हैं कि आस्रव और बन्ध एकसमयवर्ती हैं तो जिन कारणों से आस्रव होता है, उन्हीं कारणों से बन्ध होता है, तो अब आप बन्ध की ओर देखें। यह सूत्र जो आस्रव का था, वह छठवें अध्याय का था।

संवर को शुरु कहाँ से करें?

अब हम देखें कि बन्ध के हेतु कौन से बताए गए, जिनके रुकने पर यह बन्ध रुकता है। वह कौन से अध्याय में है? आस्रव को भी छोड़ना है, हमें संवर को अपनाना है, निर्जरा को अपनाना है। हम शुरु कहाँ से करें? फिर तो आपको कहाँ से शुरु करना बताना पड़ेगा? इस सूत्र के अनुसार तो यही कहना पड़ेगा कि आपको सबसे पहले अपने मिथ्यात्व को रोकना। सबसे पहले जो बन्ध के हेतु है, उन बन्ध के हेतुओं को रोकना। जैसे ही मिथ्यात्व रुकेगा, मिथ्यात्व कर्म का जो बन्ध का कारण है, उसको अगर रोक लिया, उसका संवर हो गया तब क्या होगा? पहले गुणस्थान से ऊपर उठने पर ही मिथ्यात्व का संवर होगा। क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व का संवर नहीं होगा। जब वह मिथ्यात्व का अभाव होगा तब मिथ्यात्व का संवर कहलाएगा। जब पहला गुणस्थान छूटेगा, जो अनादि काल से चला आ रहा है...मिथ्यात्व भाव, मिथ्यात्व गुणस्थान, तब जाकर के उस जीव की progress वहाँ से शुरु होगी।

पहला गुणस्थान छूटने पर मिथ्यात्व का संवर होगा

सबसे पहले संवर किसका होगा? मिथ्यात्व का होगा। अब यह मिथ्यात्व अपने आप में एक कारण है और इस कारण ने अपने साथ में बहुत सारी प्रकृतियों को जोड़ रखा है। जब आप बन्ध, बन्ध व्युच्छित्ति और बन्ध की अबन्ध प्रकृतियाँ और इनके संवर, गुणस्थानों के अनुसार कभी पढ़े, कर्मकाण्ड के अनुसार तब आपको थोड़ा सा ज्ञान में आएगा कि एक मिथ्यात्व के साथ में सोलह प्रकृतियों का संवर रुकता है। अगर एक मिथ्यात्व छूट गया, आपने बहुत कुछ सीखा-समझा, आपने मिथ्यात्व छोड़ने की कोशिश की। आपने एकान्त बुद्धि छोड़ी, विपरीत बुद्धि छोड़ी, अज्ञान छोड़ा, वैनयिक छोड़ा, सब छोड़ा, संशय छोड़ा। अब फिर भी आपके मन में लगता है कि मिथ्या छूटा नहीं है महाराज! कुछ मिथ्यात्व कहीं न कहीं अभी और रह गया है।

अध्यात्म ग्रन्थ से ही समझ सकते हैं कि मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

जो मिथ्यात्व practically हमारे लिए होता है- मिथ्यात्व भाव, वह अध्यात्म ग्रन्थों में हमें बताया जाता है। अध्यात्म ग्रन्थ से ही हम practically समझ सकते हैं कि मिथ्यात्व किसे कहते हैं? यह तो सैद्धान्तिक ग्रन्थों के माध्यम से हमें सैद्धान्तिक परिभाषाएँ सुनने को मिल जाती हैं और हम अपनी जो एकान्त आदि धारणाएँ होती हैं, उनको हम छोड़ सकते हैं। आपने कहा तत्त्व का श्रद्धान करो...हम तत्त्व का श्रद्धान करते आ रहे हैं महाराज! जब से आप पहले अध्याय का पहले सूत्र से पढ़ा रहे हो। अभी तक हम परोक्ष सुनते थे...चलो! आज प्रत्यक्ष सुनते हैं।

बहिरात्मा क्या है ?

जो श्रद्धा बढ़ रही है, इसको अगर हम practical form में देखेंगे तो यह कैसे दिखाई देगी? आचार्य कहते हैं- बहिरात्मा का मतलब यह होता है...मिथ्या दृष्टि जीव। क्या कहा गया? मिथ्या दृष्टि

का मतलब क्या है? बहिरात्मा। बहिरात्मा का मतलब क्या? जिसकी आत्मा, आत्मा को ही छोड़कर के बाहर-बाहर घूमती हो, उसका नाम है- बहिरात्मा। क्या समझे? अब आप कहोगे आत्मा, आत्मा को कैसे छोड़ देगी? आत्मा का जो ज्ञान है, आत्मा का जो ज्ञानोपयोग है, वह ज्ञानोपयोग अपनी ही आत्मा को आत्मा न मान कर के अन्य सब चीजों में अपनापन मान कर के सबको बाहर की पूरी दुनिया को शरीर से लेकर के पूरे संसार को अपना मानने की कोशिश करता है। इसलिए उसका नाम आचार्यों ने क्या कहा? बहिरात्मा। यह मिथ्यात्व की practical बात है। क्योंकि अब यह जानना भी जरूरी है। नहीं तो अभी नौवाँ अध्याय तो इसमें आपके मतलब का तो कुछ है ही नहीं। अभी इसमें मुनियों का वर्णन शुरू होने वाला है। संवर, निर्जरा सब कहाँ होती है? सब व्रतों के बाद शुरू होती है, सब मुनियों के माध्यम से शुरू होती है। आपको तो केवल सुनना है। आप कहोगे हम क्या करे? आपके लिए संवर करने के लिए यहाँ पर बताया जाना जरूरी है, वह यह भाव है कि मिथ्यात्व का संवर करने के लिए हमें अपने बहिरात्म-वृत्ति को बदल करके क्या करना पड़ेगा? अन्तरात्म-वृत्ति में लाना पड़ेगा।

अन्तरात्म वृत्ति आने पर मिथ्यात्व भाव छूटने लग जाता है

इसी को आचार्यों ने कहा...तीन प्रकार की आत्मा है। एक बहिरात्मा, एक अन्तरात्मा और एक परमात्मा। ये आत्मा की ही state हैं। अब जब तक यह बहिरात्मपन रहता है तब तक मिथ्यात्व का भाव है। यह अध्यात्म के माध्यम से समझ में आता है कि बहिरात्मपन क्या है? **'देह जीव को एक गिने वही बहिरातम तत्त्व मुधा'** कि देह और जीव को जो एक गिनेगा, उसमें बहिरात्म वृत्ति है और जो देह और जीव के अन्तर को जानेगा वह अन्तरात्म वृत्ति है। जहाँ से अन्तरात्म वृत्ति आने लग गई, समझ लो हमारा मिथ्यात्व भाव छूटने लग गया

और जब यह मिथ्यात्व छूटने लग गया तो सम्यग्दर्शन के साथ में वह अन्तरात्मा कहलाने लग गया। यह भीतर से अनुभूत करने वाली चीज है।

मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ

परमात्मा बनना है। यह कहना सबके लिए बड़ा easy होता है। क्या बनना है? परमात्मा बनना है। कोई यूँ नहीं कहता कि पहले अन्तरात्मा बनना है। क्या बने हुए हो? बहिरात्मा बने हुए हैं, वह तो अनादि काल से बने हुए हो, उसको तो किसी ने बनाया नहीं। वह तो already सब चल ही रहा है since beginning less time. वह जो है बहिरात्मा बने हुए है। अब बनना क्या है? परमात्मा और बीच के सब steps गायब हैं। यह जो एक कमी है कि हम पहला step नहीं देख रहे हैं और last step देख रहे हैं, इससे भी हमें कुछ उपलब्ध शायद नहीं होगा। क्योंकि हमें देखना क्या चाहिए? पहला कदम तो ऊपर उठे, हम थोड़ा सा तो अपनी सामर्थ्य इतनी बनाएँ कि हम अपने एक कदम को ऊपर उठा कर के पहले से जब भी कभी आएगा तो दूसरा तो नहीं आता। गुणस्थान की अपेक्षा से देखेंगे तो चौथा ही आएगा तो पहला कदम जब भी उठेगा तो कम से कम हमारा सम्यग्दर्शन की ओर हो। बहिरात्म वृत्ति से हमारी वृत्ति अन्तरात्म वृत्ति बन जाए। **यह मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है।**

एक तरफ तो यह तत्त्व सिद्धान्त आपने सीख लिया लेकिन इसमें आपके लिए practically जो करने योग्य है, वह सिर्फ इतना ही है कि इस तत्त्व की श्रद्धा हमारे अन्दर कैसे आएगी? बन्ध तत्त्व की श्रद्धा! श्रद्धा इससे नहीं आ जाएगी कि जैसा बन्ध लिखा है, वैसा हमें हूबहू स्वीकार है। जैसे सातवें अध्याय में संवर का वर्णन किया गया वैसा ही हमें संवर का वर्णन स्वीकार है। जैसे आठवें

अध्याय में बन्ध का वर्णन किया गया वैसा बन्ध का वर्णन मुझे A to Z बिल्कुल हमारे लिए स्वीकार है और जैसा आप नौवें अध्याय में कर दोगे संवर और निर्जरा वैसा महाराज बिना नु-नच किये मैं स्वीकार कर लूँगा, मुझे तत्त्व का श्रद्धा पूरी हो गयी। फिर भी आपके हाथ क्या लगेगा?

तत्त्व में श्रद्धा हमें श्रद्धान करने से आएगी

सिर्फ यह ज्ञान तो हाथ लगेगा लेकिन तत्त्व श्रद्धा अगर शुरु होती है तो कहाँ से शुरु होती है? सिर्फ इस बात के difference के साथ कि हमारे ज्ञानोपयोग में हमारी ही ज्ञान आत्मा का श्रद्धान है और शरीर आदि जो हमसे भिन्न चीजें हैं, उन्हें हम भिन्न रूप में श्रद्धान कर रहे हैं या नहीं। यहीं से जीव और अजीव का श्रद्धान शुरु होता है और जहाँ से जीव-अजीव के बीच का यह difference, यह सिद्धान्त के साथ में शुरु हो जाएगा, वहीं से अपने आप सब तत्त्वों की श्रद्धा प्रारम्भ हो जाएगी। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा सब उसी के साथ जुड़े हुए हैं तो चलना तो शुरु से है।

CLASS-02

last से चलकर के पीछे नहीं आना है। चलना तो शुरु से है और शुरु से चल कर के last तक पहुँचना है। अतः जीव-अजीव पर पहले श्रद्धा करना है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तो बाद में आएँगे और अपने आप होते चले जाएँगे। कोई जीव ऐसा है, जिसको जीव और अजीव ही केवल समझ में आया। आत्मा जीव है...मैं ज्ञानवान, चैतन्य जीव आत्मा हूँ और बस! यह शरीर आदि मेरे लिए अजीव है। उसने बस इतना सा जान करके उस पर practical करना शुरु कर दिया। practical से मतलब?

उसने उस शरीर को अपने से भिन्न मानना शुरू कर दिया। अब समझ लो कि उसके अन्दर क्या-क्या घटित होगा? जितना आप पढ़ कर के आए हो, वह सब उसके अन्दर शुरू हो जाएगा। आस्रव, बन्ध, संवर यह तो theory है।

आस्रव, बन्ध, संवर का practical

ये सब चीजें practically अगर आत्मा में घटित होंगी तो सिर्फ यहीं से शुरू होंगी कि जीव और अजीव के बीच का difference हमारे अन्दर बढ़े। ज्ञान में बार-बार वही परिणति आए कि मैं जीव हूँ, अजीव जो शरीर है, यह मुझसे भिन्न है और यह मेरा नहीं है, मेरे साथ जरूर है। यह मेरे साथ तो है लेकिन मेरा नहीं है। जैसे हम दूसरी चीजों को कहते हैं, ये चीजें मेरे साथ थी, अब नहीं है, तो नहीं है क्योंकि वह मेरी नहीं थी। उसी तरीके से शरीर भी हमारे साथ है लेकिन वह शरीर मेरा नहीं है। इस शरीर में मेरेपन का भाव जब छूटेगा तभी जीव और अजीव के बीच का श्रद्धान आएगा, तभी मिथ्यात्व का संवर होगा और वहीं से जीव के अन्दर अपने-आप उसकी progress शुरू हो जाएगी, जो गुणस्थानों के माध्यम से होती है। जिसे हम कहते हैं- मोह का संवर करने पर, मिथ्यात्व का संवर करने पर ही आगे सम्यग्दर्शन होता है।

सिद्धान्त और अध्यात्म में अन्तर

सिद्धान्त और अध्यात्म इन दोनों में यह अन्तर होता है कि सिद्धान्त हमें theory बताता है और अध्यात्म हमें कुछ practically करना बताता है। अब आप कहोगे महाराज! ये बातें आज आप यहाँ क्यों बता रहे हो? इसलिए बता रहा हूँ कि अब यह नौवाँ अध्याय आ गया, अब कुछ बचा नहीं। यद्यपि अध्याय बहुत बड़ा है लेकिन practically अगर आपने कुछ नहीं किया तो आपको आगे कुछ हाथ लगने वाला नहीं। क्योंकि आपके लिए चर्चा अभी ही हो सकती है, आगे से तो फिर

मुनियों की चर्चा शुरू हो जाएगी। उसमें जितना भी संवर का निर्जरा का प्रकरण है सब मुनि महाराज के लिए...पूरा अध्याय। आप क्या करोगे? करने के लिए भाव जो है, वह यहाँ पर है अपना मिथ्यात्व भाव छोड़ने के लिए अपनी देह से जो आत्म बुद्धि जुड़ी है, उसको हटाना है।

देह और आत्मा अलग होने का अभ्यास कैसे करें

पता कैसे लगेगा कि देह से हमारी आत्म बुद्धि जुड़ी है कि हट गई है? पता लगने का तरीका यह है कि जब भी कभी देह के ऊपर कष्ट आता है, देह में रोग होते हैं, देह में अनेक तरीके की पीड़ाएँ होती हैं, देह की विपरीतताएँ होती हैं। उस समय पर हम इस देह के स्वभाव को समझ कर के अपनी ही आत्मा के ज्ञानोपयोग को, अपनी ज्ञान आत्मा में लगा कर के उस पीड़ा से अपने आप को परेशान न करते हुए, उस पीड़ा को भी कर्म का एक फल समझते हुए उससे अपने आप को जब हम भीतर ही भीतर विरक्त करेंगे और जब भीतर ही भीतर इस तरीके की साधना करेंगे कि हम इस शरीर की पीड़ा को शरीर की ही पीड़ा समझ कर के कर्म फल की एक वेदना समझ कर के छोड़ रहे हैं और हम अपने शान्त स्वभाव में ही लीन हो रहे हैं तो यह अभ्यास आपके अन्दर का बताएगा कि आपको जीव-अजीव का श्रद्धान हुआ है।

प्रश्न सही किया जा रहा है कि कैसे पता पड़ेगा? एक तो पता यह हो गया। अब आप कहोगे इसके लिए क्या मुझे रोगी होना पड़ेगा? क्या जब तक पीड़ा नहीं होगी? तब तक हमें समझ में नहीं आएगा? उसका दूसरा तरीका यह है कि जब तक पीड़ा नहीं होती है तब तक हम सुख पूर्वक क्या करें? यह अभ्यास करें...जीव का और देह का। सुख के समय पर अगर हम यह अभ्यास करते रहेंगे तो दुःख के समय पर भी अभ्यास हमारे लिए कुछ बनेगा साथ में रहेगा। अन्यथा क्या होगा? सुख के समय पर जब अभ्यास नहीं किया तो दुःख के समय पर तो अभ्यास होने का तो मन बनना ही

कठिन है, तो फिर क्या होगा? सुख के समय पर हम आलस में रहे और दुःख के समय पर मन नहीं बना तो दोनों तरीके से गए। इसलिए अगर हमारे लिए कोई रोग नहीं है तो सुख पूर्वक भी यह संवर किया जाता है।

जिसने कष्ट में अभ्यास कर लिया वह पार हो गया

इसको आचार्य ने क्या कहा? सुख पूर्वक संवर करो। सुख पूर्वक संवर कैसे करो? अधिक से अधिक ध्यानात्मक वृत्ति रखो, अधिक से अधिक भेद-विज्ञानात्मक वृत्ति रखो। यह भेद विज्ञान का भाव हमेशा बना रहना कि मैं शरीर में रह रहा हूँ लेकिन मैं शरीर नहीं हूँ। इस भेद-विज्ञान के भाव में जो व्यक्ति जागृत रहता है, उसके लिए यह अभ्यास ही उसके अन्दर अन्तर्मुखी अभ्यास कहलाता है और यही उसके उपयोग को अन्तर्मुखी बनाए रखता है। इसी से उसके अन्दर यह धीरे-धीरे अभ्यास चलते हुए, उसे जब कभी कष्ट आते हैं तो उन कष्टों को भी सहन करने का अपना मन बना पाता है और फिर जब कष्ट आते हैं तो फिर आचार्य कहते हैं- जिसने कष्ट में ऐसा अभ्यास कर लिया तो समझ लो कि वह पार हो गया। क्योंकि कष्ट में अगर वह अभ्यास किया गया तो उसका संस्कार उसके ऊपर जो पड़ेगा, वही संस्कार उसके लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होगा। इसलिए आचार्यों ने यह भी कहा है कि जो सुख पूर्वक अभ्यास किया जाता है, उसका संस्कार ज्यादा नहीं रहता, जो दुःख के समय पर किया जाता है उसका संस्कार ज्यादा रहता है।

एक समाधितन्त्र नाम का ग्रन्थ है आचार्य पूज्यपाद महाराज का, समझ आ रहा है? उसमें बहुत अच्छा श्लोक आता है-

> अदु:ख भावितं ज्ञानं दु:खे सति विलीयते।
> तस्मात् यथा बलं योगी दु:खै आत्मानं भावयेत्।।

क्या कहा गया? 'अदुःख भावितं ज्ञानं' अदुःख अर्थात् दुःख से रहित होकर के जिस ज्ञान की हमने भावना की है, वह दुःख आने पर विलीन हो जाएगा। दुःख आने पर छूट जाएगा, वह ज्ञान भी चला जाएगा और जिस ज्ञान को हमने दुःख के साथ अर्जित किया है, दुःख में जिस ज्ञान की हमने भावना की है, वह हमारे लिए हमेशा बना रहेगा। अब देखो! कितनी उल्टी बात हो गई। आपको तो लगता है...सुख पूर्वक महाराज रहें, सुख पूर्वक संवर हो जाए, सुख पूर्वक ही निर्जरा हो जाए, सुख से ही मरण हो जाए, सुख से ही मोक्ष हो जाए। लेकिन यह सुख पूर्वक जब भी होगा तो वह सुख भी तब आएगा, जब पहले दुःख के साथ में भावना की गई हो और दुःख से आप डरोगे तो भावना कब की जाएगी? इसलिए दुःख अगर किसी के ऊपर आता है, दुःख कष्ट किसी के ऊपर आता है और वह उस समय पर इस तरह से आत्म भावना में तत्पर होता है, आत्म भावना में लगता है तो वही संस्कार उसके लिए आगे सुख पूर्वक संवर में काम आता है। क्योंकि एक बार जो उसने दुःख को जीत लिया तो फिर वह आगे हमेशा उसके लिए सुख ही सुख मिलेगा। फिर सुख-पूर्वक संवर करेगा तो आप लोग जो बैठे हो सुख पूर्वक, यह संवर नहीं कर रहे हो। संवर वस्तुत: वह जीव करेगा जिसके ऊपर दुःख आ रहा हो और दुःख में आत्मा की भावना कर रहा हो। सत्य तो सत्य है, थोड़ा सा आपको गलत सा लग जाए लेकिन सत्य तो सत्य है।

स्तुति के योग्य पुरुषार्थ

या यदि आपको आज भी सुख पूर्वक संवर हो रहा है तो आपने पहले उस दुःख को जीत लिया है तो आज हो पाएगा क्योंकि पहले दुःख को जीतना पड़ेगा। इसलिए यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि दुःख के समय पर जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह ज्ञान हमारे साथ में लम्बे समय तक रहता है। अध्यात्म यह कहता है। इसलिए जब कभी भी दुःख आते हैं तो अध्यात्म निष्ठ व्यक्ति दुःख में घबराता नहीं है। तभी वह मिथ्यात्व का संवर करके, निरोध करके, तभी वह सम्यग्दृष्टि पने के भाव में रहता

है। बहिर्मुखी वृत्ति को छोड़ना, अन्तर्मुखी वृत्ति आना इसका नाम ही है- संवर को प्राप्त करना। संवर की पहली सीढ़ी चढ़ जाना। बस! आप पहली सीढ़ी चढ़ जाओ, फिर आगे तो आपको हम चढ़ाते चले जायेंगे, फिर कुछ नहीं करना पड़ेगा। पहली सीढ़ी चढ़ने का बस अभ्यास आपको करना है। पुरुषार्थ आपको करना है बाकि तो आगे अपने-आप आप चढ़ते चले जाओगे। अनादि काल से इस जीव ने इस पहली सीढ़ी नहीं चढ़ पाया। वह क्या है? शरीर में ममत्व बुद्धि को छोड़कर, आत्म बुद्धि को छोड़कर अपनी ही आत्मा को ही अपनी चैतन्य आत्मा मानकर, इस शरीर की होने वाली पीड़ाओं को, रोगों को भी अपने से भिन्न समझकर, इसमें अपनी ममत्व बुद्धि को त्याग जो कर लेता है, उस जीव का पुरुषार्थ स्तुत्य होता है मतलब स्तुति के योग्य होता है। ऐसा पुरुषार्थ ही यहाँ पर यह हमें संवर करना सिखा रहा है, तो यह पुरुषार्थ आप लोगों के लिए है। बाकी जो शुरू होगा आगे वह तो जो कर रहे हैं उनके लिए होगा।

पुरुषार्थ ही यहाँ हमें संवर करना सिखा रहा है

यह भाव यही पर इस संवर के साथ में है। जब मिथ्यात्व का संवर होगा तभी ये 16 प्रकृतियों का बन्ध रुकता है। फिर उसके बाद में दूसरा गुणस्थान आता है, तो 25 प्रकृतियों का बन्ध रुकता है। ऐसे अलग-अलग कर्मों के बन्ध, अलग-अलग गुणस्थानों में रुकते चले जाते हैं और इन प्रकरणों का इस तरीके से संवर होता चला जाता है, तो पूरा का पूरा मिथ्यात्व से लेकर के चारित्र मोहनीय की सभी प्रकृतियों का संवर होने पर और योगों का संवर होने पर तब जाकर के जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। लेकिन उसका first step कहाँ से है? यहाँ से! बहिरात्मा से पहले अन्तरात्मा बनना...वह किसी भी उम्र में हो सकता है। उसके लिए उम्र के लिए कोई मोहताज नहीं होना है कि महाराज बुढ़ापे में करेंगे, बड़े होकर करेंगे, अभी नहीं अगले जन्म में करेंगे, वह कभी भी किसी के लिए हो सकता है। उसके लिए कोई भी उम्र के लिए मोहताज नहीं होना। इसलिए यह संवर की

प्रक्रिया में सबसे पहले भाव रखना कि हमें मिथ्यात्व को रोक करके संवर के माध्यम से सम्यग्दृष्टि बनना। आज इतना ही पर्याप्त है।